गंगा-पुस्तकमाला का तिरसठवाँ पुष्प

प्राचीन पंडित और कवि

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

रेशमी जिल्द १=)] संवत् १९८५ वि० [सादी ॥=)

प्रकाशक

श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीमहादेवप्रसाद श्रीवास्तव

ताल्लुक़दार-प्रेस

लखनऊ

भूमिका

भवभूति ने जिस पद्मावती नगरी का वर्णन किया है उसका निश्चित पता लग गया। इसका सारा श्रेय श्रीयुत माधवराव वेंकटेश लेले को है। वे कुछ समय तक ग्वालियर में थे। वहाँ उन्होंने इस प्राचीन नगरी के चिह्नों का पता लगाया। झाँसी से जो रेलवे लाइन ग्वालियर होकर आगरा-छावनी को जाती है उस पर झाँसी और ग्वालियर के बीच डबरा नाम का एक स्टेशन है। वहाँ से कोई १४ मील दूर पवाया-नामक एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव भवभूति की सिन्धु (सिंध) और पारा (पार्वती) नदियों के संगम पर बसा हुआ है। वहाँ से कोई दो मील दक्षिण-पश्चिम सिन्धु-नदी का प्रपात है। उसी के विषय में भवभूति ने लिखा है—"अयमसौ भगवत्याः सिन्धोर्दारितरसातलस्तटप्रपातः"।

फिर जिस लवणा (नून) और मधुमती (मधुवर) का उल्लेख भवभूति ने किया है वे भी पवाया के पास ही हैं। पवाया से दो ही मील पर मधुवर-नदी सिन्धु में गिरी है और उसके ठीक संगम पर एक प्राचीन शिवलिंग भी है। मंदिर तो अब नहीं रहा; उसकी जगह पर एक चबूतरा अवश्य है। पर लिंग अब तक वर्तमान है और यह लिंग भवभूति के सुवर्णबिन्दु-नामक शिव का ही लिंग होगा।

अतएव पद्मावती नगरी वहीं रही होगी, इसमें संदेह नहीं। वहाँ पुरानी इमारतों के कुछ चिह्न और स्तम्भ अब तक विद्यमान हैं। ये सब ईसा की पहली शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक के हैं। प्राचीन नाग-वंश के राजाओं के सिक्के तो आज तक सैकड़ों मिल चुके हैं और अब तक मिलते जाते हैं। ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी का एक शिला-लेख भी संस्कृत में मिला है। लिपि उसकी ब्राह्मी है। ग्वालियर-राज्य के पुरातत्त्व-विभाग के अध्यक्ष, मिस्टर एम० बी० गर्दे, ने इस लेख का संपादन किया है। लेख में मणिभद्र-नामक देवता की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है। यह मूर्ति भी टूटी-फूटी अवस्था में मिली है। लेख राजा शिवनंदी के समय में खोदा गया था। पर इस राजा का कुछ भी ऐतिहासिक हाल अब तक नहीं मालूम हुआ। पवाया के निवासी परंपरा से सुनते आये हैं कि यहाँ पहले एक प्रसिद्ध राजधानी थी और अनेक प्रतापी नरेश यहाँ हो गये हैं। यहाँ तक कि वे लोग संकल्प में "पद्मावती-नगर-संगमक्षेत्रे" का अब तक उल्लेख भी करते हैं। इससे सिद्ध है कि मालतीमाधव में भवभूति की उल्लिखित पद्मावती नगरी वहीं पर थी जहाँ पर अब पवाया-नामक छोटा-सा गाँव है। यदि आठवीं शताब्दी में ग्वालियर के आसपास का प्रांत विदर्भ-देश कहाता रहा हो तो, कुछ लोगों के अनुमान के अनुसार, पद्मावती ही भवभूति की जन्मभूमि

फलप्रद हो सकता है। अन्यथा बाज़ार में वह कहीं और ही जगह रहा होगा।

इस छोटी-सी पुस्तक में ८ प्राचीन विद्वानों के विषय में लिखे गये लेखों का संग्रह है। सुखदेव मिश्र बहुत पुराने नहीं, पर कल की भी बात आज पुरानी हो जाती है। इस दृष्टि से वे भी नये नहीं, क्योंकि उनको भी हुए इस समय कोई दो सौ वर्ष हो चुके। इसके सिवा उनके चरित में विलक्षणतापूर्ण कुछ अलौकिक बातें भी हैं, जिनसे विशेष मनोरंजन हो सकता है। इस संग्रह के लेखों में कवियों के समय के क्रम का विचार नहीं किया गया। जो लेख पहले का है उसे पहले, जो उसके बाद का है वह उसके बाद रक्खा गया है। अतएव यह क्रम लेखों के समय के अनुसार है, कवियों और पंडितों के समय के अनुसार नहीं।

यदि यह पुस्तक हिंदी के प्रेमियों को पसंद आई तो हम भिन्न-भिन्न विषयों के अपने अन्यान्य लेख भी पुस्तकरूप में प्रकाशित करेंगे।

कमर्शल प्रेस,
जुही, कानपुर—नवंबर १९१८

महावीरप्रसाद द्विवेदी

सूची

प्राचीन पंडित और कवि

भवभूति

प्राचीन कवियों, पंडितों और नाटककारों के विषय में दो-एक को छोड़कर हिंदी के अन्य अनुरागी सज्जन प्रायः कभी कुछ लिखते ही नहीं। हिंदी का साहित्य इस प्रकार के निबंधों से शून्य-सा हो रहा है। जैसे और-और बातों में बँगला और मराठी-भाषा का साहित्य हिंदी के साहित्य से बढ़ा हुआ है, वैसे ही वह इस विषय में भी है। महामहोपाध्याय सतीशचंद्र विद्याभूषण, पंडित विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर और पंडित माधवराव वेंकटेश लेले इत्यादि विद्वानों ने, अपनी-अपनी देश-भाषा में, भवभूति के विषय में बहुत कुछ लिखा है। प्रोफ़ेसर विलसन, सर मानियर विलियम्स, कोलब्रुक, भांडारकर और दत्त इत्यादि ने भी भवभूति और उसके नाटकों की प्रशंसा करने में अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है। परंतु, हिंदी में, जहाँ तक हम जानते हैं, भवभूति के विषय में किसी ने कुछ नहीं लिखा।

विष्णु शास्त्री ने कालिदास, भवभूति, बाण, सुबंधु और दंडी, इन पाँच प्राचीन कवियों पर, मराठी में, पाँच निबंध

लिखकर इन पाँचों के समाहार का नाम "संस्कृत-कविपंचक" रक्खा है। शास्त्री महाशय ने भवभूति को छोड़कर शेष चार कवियों के समय का निरूपण भी यथाशक्य किया है और उनके विषय में, जहाँ तक संभव था, गवेषणा भी की है। परंतु भवभूति के समय के विषय में उन्होंने बहुत ही कम लिखा है। उनके कथन का आशय यह है- केवल मृच्छकटिक, प्रबोधचंद्रोदय, नागानंद इत्यादि नाटकों में और दशकुमारचरित इत्यादि ग्रंथों में उस समय के जनसमूह की स्थिति का कुछ परिचय मिलता है। इसलिये भवभूति को कालिदास का समसामयिक मानने की अपेक्षा जिस समय ये ग्रंथ निर्मित हुए हैं उस समय के आसपास उसका अस्तित्व स्वीकार करना विशेष युक्तिसंगत है।

विष्णु शास्त्री ने जिनका नाम दिया है वे प्रायः सातवीं शताब्दी के ग्रंथ हैं। जैसे इन ग्रंथों में दीर्घ समासों की प्रचुरता है, वैसे ही भवभूति के नाटकों में भी है। जैसे इनमें बौद्ध-धर्मावलंबियों के चरित का कहीं-कहीं चित्र खींचा गया है, वैसे ही भवभूति के मालतीमाधव में भी खींचा गया है। इसीलिये विष्णु शास्त्री ने शूद्रक, कृष्ण मिश्र, बाण और दंडी के समय के सन्निकट भवभूति का होना अनुमान किया है। इतना ही लिखकर वे चुप हो गए हैं; भवभूति के समय का विशेष निरूपण उन्होंने नहीं किया।

राजतरंगिणी के चतुर्थ तरंग में लिखा है—

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्

(श्लोक १४४)

अर्थात्, वाक्पतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवा किए गए यशोवर्मा ने (ललितादित्य से) परास्त होकर उस विजयी का गुण गाया। यशोवर्मा नाम का राजा सन् ६९३ से ७२६ ईसवी तक कन्नौज के राज्यासन पर आसीन था। इस यशोवर्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया, और भवभूति को अपने साथ वह काश्मीर ले गया। इससे यह सिद्ध है कि भवभूति, अष्टम शताब्दी के आरंभ में, कान्यकुब्जाधिप यशोवर्मा की सभा में, उसका आश्रित होकर, विद्यमान था। अतएव "यह कहना समुचित नहीं जान पड़ता कि भवभूति को राजाश्रय था; यदि उसे राजाश्रय होता तो उसके तीनों नाटकों का प्रयोग कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय क्यों होता ?", विष्णु शास्त्री की यह उक्ति बिलकुल निराधार है। भवभूति को राजाश्रय अवश्य था। कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय उसके नाटकों का क्यों प्रयोग हुआ, इसका कोई कारण होगा। भवभूति ने यशोवर्मा की सभा में स्थान पाने के पहले ही शायद अपने नाटक लिखे हों; अथवा यशोवर्मा के पराजय के अनन्तर काश्मीर जाकर और वहाँ से राजाश्रय-

हीन होकर, स्वदेश को लौटने पर, शायद उसने उन्हें बनाया हो; अथवा राजधानी की अपेक्षा यात्राओं में अधिक जन-समूह एकत्र होने के कारण उसी अवसर पर शायद उसने अपने नाटकों का प्रयोग किया जाना प्रशस्त समझा हो।

कुछ वर्ष हुए, डॉक्टर बूलर को एक "गौडवहो" (गौड़वध) नामक प्राकृत काव्य मिला। इस काव्य को श्रीयुत पांडुरंग ने बंबई में छपाकर प्रकाशित किया है। इसके कर्ता वही वाक्पति-राज हैं, जो यशोवर्मा की सभा में विद्यमान थे। उन्होंने "गौड़ वध" में यशोवर्मा का विस्तृत वृत्तांत लिखा है और तदुपरांत गौड़देश के राजा का पराजय वर्णन किया है। इस काव्य में वाक्पतिराज ने अपनी कविता के संबंध में लिखा है

प्राकृत

भवभूइजलहिनिग्गयकव्वामयरसकणा इव फुरन्ति
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसु

संस्कृत

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथाप्रबन्धेषु

अर्थात्, भवभूतिरूपी जलनिधि से निकले हुए काव्यरूपी अमृत के कणों के समान जिसके निबंधों में अनेक विशेष विशेष गुण अद्यापि चमक रहे हैं। इससे भी वाक्पतिराज के साथ भवभूति का, यशोवर्मा के यहां अष्टम शताब्दी के प्रारंभ में, होना सूचित होता है।

कुछ वर्ष हुए, हमारे मित्र पंडित माधवराव वंकटेश लेले को बंबई में, एक प्राचीन हस्त-लिखित मालतीमाधव की पुस्तक मिली। उसमें "भट्टकुमारिलशिष्य भट्टभवभूति" लिखा है। 'गौडवध' की भूमिका में भी लिखा है कि इंदौर में मालतीमाधव की एक पुस्तक मिली है, जिसमें "इति—कुमारिल-शिष्यकृते" लिखा है। कुमारिल भट्ट सप्तम शताब्दी के अंत में हुए हैं। अतएव भवभूति का अष्टम शताब्दी के आदि में होना सब प्रकार सुसंगत है।

शंकरदिग्विजय में लिखा है कि विद्धशालभंजिका और बालरामायण आदि के कर्ता राजशेखर के यहाँ शंकराचार्य गए थे, और उनके बनाए नाटक आचार्य ने देखे थे। इससे राजशेखर और शंकर की समकालीनता प्रकट होती है। राजशेखर अपने बालरामायण में लिखते हैं—

बभूव वल्मीकभुवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः

अर्थात्, पहले वाल्मीकि कवि हुए। फिर भर्तृहरि ने जन्म लिया; तदनंतर जो भवभूति-नाम से प्रसिद्ध था, वह अब राजशेखर के रूप में वर्तमान है। शंकराचार्य अष्टम शताब्दी के अंत में हुए हैं। अतएव राजशेखर का अस्तित्व भी उसी समय सिद्ध है। जब यह सिद्ध है तब ऊपर दिए गए श्लोक

(भवभूति का समय राजशेखर से कुछ ही पहले-
थम शताब्दी के आरंभ में, होना भी सिद्ध है।
ताब्दी के मध्य में होनेवाले बाण कवि ने अपने
में जिन कवियों के नाम दिए हैं, उनमें भवभूति
न दिया जाना भी बाण के अनंतर भवभूति का
करता है।

ने महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तर-
—ये* तीन नाटक लिखे हैं। इनमें से अंतिम में अन्य
के दोनों नाटकों में किञ्चित् विशेष रूप से उनमें
स्थान आदि का वृत्तांत लिखा है। महावीरचरित
थ में जो कुछ भवभूति ने लिखा है, वह यह है—

दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचि-
: काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पंचाग्नयो
सोमपीथिन उदुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति।
स्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पंचमः
ो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकंठस्या-
श्रीकंठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः।

डारकर लिखते हैं कि शार्ङ्गधर-पद्धति में—
ानि पचामि यदि नाटयन्य का अपि:
कविनिश्चितः किमिवश्चलोऽस्मो भवेत
भवभूति के नाम से निर्दिष्ट है, जिससे सूचित होता है
ने इन तीन नाटकों के अतिरिक्त और भी कोई ग्रन्थ
कि यह श्लोक इन तीनों पुस्तकों में नहीं पाया जाता।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवांगिराः
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः

अर्थात्, दक्षिण में पद्मपुर नाम नगर है, जहाँ यजुर्वेद की तैत्तिरीय-शाखा का अध्ययन करनेवाले, व्रतधारी, सोम-यज्ञकारी, पंक्तिपावन, पंचाग्निक, ब्रह्मवादी, काश्यपगोत्रीय उदुंबर ब्राह्मण रहते हैं। उनके यहाँ वाजपेय-यज्ञ करनेवाले, पुण्यशील, भट्ट गोपाल-नामक महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ। भट्ट गोपाल के पौत्र, और पवित्रकीर्ति पिता नीलकंठ तथा माता जातूकर्णी के पुत्र, श्रीकंठ-उपाधि-भूषित भवभूति का वहीं जन्म हुआ। परमहंसों में श्रेष्ठ और महर्षियों में अंगिरा के समान जिस (भवभूति) के गुरु भगवान् ज्ञाननिधि* नाम यथार्थ में ज्ञाननिधि ही हैं।

इसी का सारांश विष्णु शास्त्री ने, अपने भवभूति-नामक निबंध में, इस प्रकार लिखा है—

"दक्षिण-देश के अंतर्गत पद्मपुर-नगर में उदुंबर-नामक तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहते हैं। उन्हीं के वंश में गोपाल-भट्ट का जन्म हुआ। गोपाल भट्ट के नीलकंठ-नामक पुत्र हुआ और नीलकंठ के भवभूति-नामक। भवभूति की माता का नाम जातूकर्णी था। पीछे से यह कवि भट्ट-श्रीकंठ नाम से भी पुकारा जाने लगा।"

परंतु इस विषय में उन्होंने और अधिक चर्चा नहीं की; इतना ही कहकर वह चुप हो गए हैं।

*कुमारिल भट्ट ही का नाम ज्ञाननिधि तो नहीं?

महावीरचरित से जो पंक्तियाँ हमने उद्धृत की हैं वही पंक्तियाँ, कुछ परिवर्तित रूप में, मालतीमाधव में भी हैं। वहाँ उनका आरंभ इस प्रकार हुआ है—"अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मनगरं नाम नगरम्" जिससे सिद्ध होता है कि दक्षिणापथ के विदर्भ-देश में पद्मपुर अथवा पद्मनगर था। विदर्भ का आधुनिक नाम बरार है; परंतु बरार-प्रांत में पद्मपुर का कहीं पता नहीं। वह नगर इस समय अस्तित्व-हीन हो गया जान पड़ता है। मालतीमाधव के टीकाकार जगद्धर ने पद्मपुर और पद्मावती में अभेद बतलाया है, वह ठीक नहीं। पद्मावती, मालतीमाधव में वर्णन किए गए मालती और माधव के विवाहादि का घटना-स्थल है। डॉक्टर भांडारकर का मत है कि भवभूति का जन्मस्थान बरार में कहीं चाँदा के पास रहा होगा। वहाँ कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय-शाखावाले अनेक महाराष्ट्र-ब्राह्मण अब तक रहते हैं। उनकी देशस्थ संज्ञा है और उनका सूत्र आपस्तंब है। चाँदा के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व उसी वेद और उसी सूत्रवाले अनेक तैलंग ब्राह्मण भी रहते हैं। भवभूति ने अपने नाटकों में गोदावरी का जो वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि वह उस नदी से विशेष परिचित था। पद्मपुर शायद गोदावरी के तट पर ही अथवा कहीं उसके पास ही रहा होगा।

मालतीमाधव की घटनाएँ पद्मावती-नगरी में हुई हैं। कवि ने इस नगरी के चिह्नों का कुछ-कुछ पता दिया है।

चतुर्थ अंक के अंत में माधव से उसका सखा मकरंद कहता है—"तदुत्तिष्ठ पारासिन्धुसम्भेदमवगाह्य नगरीमेव प्रविशावः—" जिससे विदित होता है कि पारा और सिन्धु नाम की दो नदियों के संगम पर पद्मावती-नगरी बसी थी। इस बात को कवि ने नवम अंक के आरंभ में पुनरपि पुष्ट किया है। वहाँ उसने लिखा है—

पद्मावतीविमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट-
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरिक्षम्
सेयं विभाति लवणा ललितोर्मिपंक्ति-
रम्भागमे जनपदप्रमदाय यस्याः
गोगर्भिणीप्रियनवोपलमालभारि-
सेव्योपकण्ठविपिनावलयो विभान्ति

यहाँ एक लवणा-नदी का भी नाम आया है, जिससे सूचित होता है कि पद्मावती के पास ही लवणा भी बहती थी। इसी अंक में, कुछ दूर आगे, लिखा है -

"अयञ्च मधुमतीसिन्धुसम्भेदपावनो भगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते।"

इससे यह भी जाना जाता है कि वहाँ मधुमती नाम की भी नदी थी और उसके तथा सिन्धु के संगम पर सुवर्णबिंदु-

नामक शंकर का मंदिर था। जनरल कनिंहम और पंडित वामन-शिवराम आपटे का मत है कि ग्वालियर-राज्य के अंतर्गत मालवा-प्रांत का नरवर-नगर ही प्राचीन पद्मावती है। नरवर सिंध (प्राचीन सिंधु)-नदी पर बसा है, और उसके पास ही पार्वती (प्राचीन पारा), लोन (प्राचीन लवणा) और मधुवर (प्राचीन मधुमती)-नदियाँ बहती हैं। यह पहचान जँचती तो ठीक है; परंतु पारा और सिंधु के संगम से नरवर कोई २५ मील है। इसी से डॉक्टर भांडारकर कहते हैं कि नरवर से हटकर, कहीं दूसरे स्थान पर, पद्मावती रही होगी। विक्रमादित्य के समय से ही और प्रांतों की अपेक्षा मालवा-प्रांत ने विद्या-बुद्धि में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इसी से राजमंत्रियों तक के लड़के विदर्भ-देश से पद्मावती में आन्वीक्षिकी-विद्या (न्याय-शास्त्र) पढ़ने आते थे। संभव है, विदर्भ से कान्यकुब्ज जाते समय, अथवा काश्मीर से लौटते समय, भवभूति पद्मावती ही के मार्ग से गया हो, और उस नगर की तथा उसके निकट बहनेवाली नदियों की शोभा प्रत्यक्ष देखकर मालतीमाधव में उनका वर्णन उसने किया हो। पद्मावती में विद्या की विशेष चर्चा थी; अतएव भवभूति का वहाँ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अपने निबंध में यह बात सिद्ध की है कि जैसे एक ही अर्थ के व्यंजक पृथक्-पृथक् पद

कालिदास ने अपने पृथक्-पृथक् ग्रंथों में लिखे हैं वैसे भव-भूति ने नहीं लिखे। अर्थात् भवभूति ने एक ही भाव का पिष्टपेषण करके उसे अनेक स्थलों में पद्य-बद्ध नहीं किया। यह हम भी मानते हैं। परंतु शास्त्रीजी के इस कहने से हम सहमत नहीं कि "विचारों के विषय में, हम, यहाँ पर, एक बात और कहना चाहते हैं। वह यह कि वे स्वयं कवि के हैं; और काव्यों का किंचिन्मात्र भी आधार उनको नहीं।" शास्त्रीजी का आशय शायद यह है कि भवभूति के नाटकों में उसके पूर्ववर्ती कवियों की छाया तक नहीं पाई जाती। स्वयं शास्त्रीजी को एक ऐसा उदाहरण मिला है, जिसमें भवभूति कृत मालतीमाधव के—

"वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं वाष्पपूरः"

इस श्लोक का भाव और कालिदास-कृत मेघदूत के "त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्*" इस श्लोक का भाव एक ही है। परंतु यहाँ पर शास्त्रीजी ने भवभूतिरूपी शिष्य को कालिदासरूपी गुरु से बढ़ गया बतलाकर अपने कथन को दृढ़ किया है और कहा है कि इस अर्थसाम्य से उनके मन में बाधा नहीं आ सकती। हम यह नहीं कहते कि भवभूति ने कालिदास अथवा अपने और किसी पूर्ववर्ती कवि के विचारों की चोरी की है; परंतु, हाँ,

* शकुंतला और विक्रमोर्वशी में भी कालिदास की एक उक्ति इसी प्रकार की है।

हम यह अवश्य कहते हैं कि भवभूति, कालिदास और शूद्रक आदि की अनेक उक्तियों में परस्पर समता अवश्य है। महामहोपाध्याय सतीशचंद्र विद्याभूषण, एम्० ए०, ने इस विषय के बहुत-से उदाहरण दिए हैं; परंतु हम थोड़े ही उदाहरण देकर संतोष करेंगे। देखिए—

१. कालिदास—कुवलयितगवाक्षां लोचनैरंगनानाम्।

(रघुवंश, स० ११)

भवभूति—कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव।

(मालतीमाधव, अं० २)

२. कालिदास—मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।

(रघुवंश, स० १४)

भवभूति—दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्।

(उत्तररामचरित, अं० १)

३. कालिदास—गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते।

(रघुवंश, स० ३)

भवभूति—गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

(उत्तररामचरित, अं० ४)

४. कालिदास—पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः

कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।

(रघुवंश, स० ५)

भवभूति—कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।

(मालतीमाधव, अं० २)

५. कालिदास— तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं
स्तनसम्बाधमुरो जघान च
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो
विवृतद्वारमिवोपजायते
(कुमारसंभव, स० ४)

भवभूति —सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते
(उत्तररामचरित, अं० ४)

६. शूद्रक —न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ।
(मृच्छकटिक, अं० १)

भवभूति —शरीरनिर्माणसदृशो ननु अस्य अनुभावः ।
(वीरचरित, अं० १)

भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य ।
(उत्तररामचरित, अं० ५)

७. क्षेमेंद्र— सता सदसदोर्नास्ति रागः पश्यति रज्यताम् ।
स तस्य ललितो लोके यो यस्य दयितो जनः ॥
(अवदानकल्पलता १० । ६६)

भवभूति— अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥
(उत्तररामचरित, अं० ६)

कालिदास, शूद्रक और क्षेमेंद्र, ये तीनों कवि भवभूति से पहले हुए हैं। इनकी उक्तियों की छाया भवभूति के पद्यों में, अनेक स्थलों पर, पाई जाती है। यह चाहे इन कवियों के काव्यों के पाठ से भवभूति के हृदय में उत्पन्न हुए संस्कार-विशेष का फल हो; चाहे यों ही घुणाक्षर-न्याय से पूर्व-कवियों की उक्तियों का भाव उनकी उक्तियों में आ गया हो। कुछ ही क्यों न हो, कहीं-कहीं साम्य अवश्य है।

अनेक विद्वानों का मत है कि भवभूति ने पहले महावीर-चरित, फिर मालतीमाधव और फिर उत्तररामचरित लिखा है। इन ग्रंथों की लेख-प्रणाली, इनके अर्थ-गौरव और इनके रसाल भावों का विचार करने से यह सिद्धांत युक्तिसंगत जान पड़ता है। महावीरचरित में वीर, मालतीमाधव में शृंगार और उत्तररामचरित में करुण-रस की प्रधानता है। इन नाटकों में क्या गुण हैं, और क्यों भवभूति की इतनी प्रशंसा होती है, इन सब बातों का विचार विष्णु शास्त्री ने बड़ी ही योग्यता से अपने निबंध में किया है। अनेक उत्तमोत्तम पद्य उद्धृत करके उन्होंने उनकी युक्ति-पूर्ण समीक्षा की है। भवभूति के नाटकों के कथानक की भी शास्त्रीजी ने प्रशंसा की है। परंतु मालतीमाधव के कथानक के संबंध में, डॉक्टर भांडारकर की सम्मति उनकी सम्मति से नहीं मिलती। डॉक्टर साहब का कथन है कि इस नाटक में जो श्मशान-वर्णन है, वह असंबद्ध-सा है; मूल-कथानक में

बद्ध जोड़-सा दिया गया है। वे यह भी कहते हैं कि कपाल-कुंडला के द्वारा मालती का हरण किया जाना कवि ने केवल इसलिये दिखाया है, जिससे वियोगियों की दशा का वर्णन करने के लिये उसे अवसर मिले। डॉक्टर भांडारकर ने और भी दो-एक बातें, शास्त्रीजी के मत के प्रतिकूल, कही हैं। डॉक्टर साहब के बतलाए हुए दोष ऐसे हैं जो सामान्य जनों के ध्यान में नहीं आ सकते। नाट्य-शास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में ऊपर कही बातें चाहे भले ही सदोष हों, परंतु हम, इस विषय में, यह अवश्य कहेंगे कि भवभूति का किया हुआ श्मशान-वर्णन अद्वितीय है। बीभत्स-रस का ऐसा अच्छा उदाहरण संस्कृत के और नाटकों अथवा काव्यों में हमने नहीं देखा। भवभूति का विप्रलंभ-वर्णन भी एक अद्भुत वस्तु है। अतएव भवभूति के ये दोष यदि दोष कहे जा सकते हैं तो क्षम्य हैं। यदि वह इन उपर्युक्त बातों को मालतीमाधव से निकाल डालता, तो हम बीभत्स और वियोग-शृंगार के अलौकिक रस से परिप्लुत उसकी अनूठी कविता से भी वंचित रहते। पंडित माधवराव वेंकटेश लेले ने भवभूति के सब नाटकों की समालोचना मराठी में की है और अनेक दोष दिखलाए हैं; परंतु इस छोटे-से निबंध में हम उन सब दोषों का विचार नहीं कर सकते।

अपने नाटकों के बनाने का कारण भवभूति ने कहीं भी स्पष्ट नहीं लिखा। परंतु उसके नाटकत्रय में वर्णित

वस्तुजात और पात्रों के क्रिया-कलाप आदि से उस बात का पता लगता है। जिस समय भवभूति का प्रादुर्भाव हुआ उस समय, इस देश में, बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था। षष्ठ शताब्दी में उद्योतकर, सप्तम शताब्दी में कुमारिल भट्ट और अष्टम शताब्दी में शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म को हीनप्रभ करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। वैदिक धर्म के प्रतिपादन और बौद्ध धर्म का संहार करने के लिये इन महात्माओं ने जो कुछ किया है वही भवभूति ने भी किया है। इन्होंने स्पष्ट रीति से बौद्ध धर्म का खंडन किया है; परंतु भवभूति ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा। अनेक स्थलों पर अपने नाटकों में वैदिक धर्म की श्रेष्ठता और बौद्ध धर्म की हीनता के उदाहरण दिखलाते हुए, दोनों प्रकार के धर्मावलंबियों की दिनचर्या का चित्र खींचकर, भवभूति ने सब मर्म अभिनय देखनेवालों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है, जिसका यही तात्पर्य है कि वैदिक धर्म ग्राह्य और बौद्ध धर्म त्याज्य है।

मालतीमाधव की प्रसिद्ध पात्री कामंदकी बौद्ध संन्यासिनी थी। वह अपने आश्रम-धर्म के विपरीत मालती और माधव को विवाह-सूत्र से बाँधने के झगड़े में पड़ी थी। उसकी शिष्य सौदामिनी बौद्ध संप्रदाय का त्याग करके अघोरघंट और कपालकुंडला के तांत्रिक जाल में फँसी थी। ये तांत्रिक ऐसे दुराचारी और नृशंस थे कि अपनी

इष्टदेवी चामुंडा के सम्मुख, समय-समय पर, नर-बलि दिया करते थे। मालतीमाधव का यह चित्र बौद्ध धर्म के अधःपतन का दर्शक है। वैदिक धर्म के अनुयायियों की श्रेष्ठता का चित्र वीरचरित और उत्तरचरित में है। इन दोनों नाटकों में रामचंद्र, लक्ष्मण, लव, कुश, सौधातकि, जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र और जानकी आदि के चित्रों द्वारा भवभूति ने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, राजा, प्रजा और तपस्विवर्ग के आचारों और व्यवहारों का ऐसा अच्छा आदर्श दिखलाया है, जिसको देखने से वैदिक धर्म का स्वरूप नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और उस पर आंतरिक श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। दोनों धर्मों के अनुयायियों के आचरणानुरूप दो प्रकार के उच्च और नीच चित्र चित्रित करके कवि ने उनकी उच्चता और नीचता का भेद बड़े ही कौशल से दिखाया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि ने यह सब बौद्ध धर्म की दुरवस्था सूचित करने और अभिनय देखनेवालों के मन में उस ओर अनास्था उत्पन्न करने ही के लिए किया है। भवभूति के पूर्ववर्ती विद्वानों ने बौद्ध धर्म को छिन्नमूल करने के लिए उस पर प्रत्यक्ष कुठार-प्रयोग किया था; परंतु भवभूति ने वही काम उस संप्रदायवालों को, प्रकाश रूप से बिना किसी प्रकार का मानसिक क्लेश पहुँचाये, अपने नाटकों द्वारा कर दिखाया। भवभूति के नाटकों को विचार-पूर्वक देखने से

यही भावना मन में उत्पन्न होती है कि बौद्ध धर्म निस्सार और वैदिक धर्म परम सारवान है।

नाटक लिखने में भवभूति का आसन कालिदास से कुछ ही नीचे है। कोई-कोई तो उसे कालिदास का समकक्ष और कोई-कोई उससे भी बढ़ गया बतलाते हैं। भवभूति ने मनुष्यों के आंतरिक भावों का कहीं-कहीं ऐसा उत्कृष्ट और ऐसा सजीव चित्र खींचा है कि उसे देखकर कालिदास का विस्मरण हो जाता है। खेद है, उसकी इस अद्भुत शक्ति का विकाश देखने और उसके द्वारा एक अकथनीय आनंद प्राप्त करने के लिए केवल हिंदी जाननेवालों का मार्ग बंद-सा हो रहा है। हाँ, यह सत्य है कि एक पुराने लेखक ने भवभूति के तीनों नाटकों के अनुवाद हिंदी में किए हैं; परंतु, जहाँ तक हम समझते हैं, उनके अनुवादों से भवभूति की अलौकिक कविता का अनुमान होना तो दूर रहा, उन्हें पढ़कर पढ़ने-वालों के मन में मूल-कविता के विषय में घृणा उत्पन्न होने का भय है। कहाँ भवभूति की सरस, भावात्मिक और महा-आह्लाद-दायिनी कविता और कहाँ अनुवादकजी की नीरस, अव्यवस्थित और दोषदग्ध अनुवादमाला! परस्पर दोनों में सौरस्य विषयक कोई सादृश्य ही नहीं! कौड़ी-मोहर, आकाश-पाताल और इंद्र-इंद्रायण का अंतर! अपने कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिए हम, यहाँ पर, मालती—माधव से दो-एक उदाहरण देना चाहते हैं, जिनको देखकर

पढ़नेवाले स्थालीपुलाक-न्याय से मूल और अनुवाद का अंतर समझ जायँगे—

अपनी सखी लवंगिका के धोखे माधव का आलिंगन करके, अनंतर उसे पहचान, जब उससे मालती हट गई, तब माधव कहता है—

> प्रस्तोतिकृत्तस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
>
> निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयाऽनया मे ।
>
> कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकान्त-
>
> निष्यन्दशैवलमृणालहिमादिवर्गः ॥

भावार्थ—अछूते पीन-पयोधर-रूपी मुकुलों को धारण करनेवाली इस मालती ने, कर्पूर-हार, हरिचंदन, चंद्रकांत-मणि शैवल (सिवार), मृणाल और हिम आदि शीतल पदार्थों को द्रवीभूत करके, उन्हें एकत्र निचोड़, मेरी त्वचा पर उनके रस का लेप-सा लगा दिया । इसका अनुवाद सुनिए—

> जनु तुषार चंदन रस बोरी,
>
> छिरकत अंग मृनाल निचोरी ;
>
> उभरे उर (!) सों हिए छुवावति,
>
> जनु कपूर तन घोरि लगावति ।

मूल के कर्पूर, हरिचंदन, मृणाल और हिम को लेकर हार, चंद्रकांत और शैवल को छोड़ दिया ! मूल में एक ही क्रिया है; वह भी भूतकालिक है । अनुवाद में छिरकति, छुवावति और लगावति तीन क्रियाएँ हैं और तीनों वर्तमान-

कालिक ! मानों उस समय मालतीमाधव का आलिंगन किये हुए थी। "पीन-कुच" का अर्थ उरोज नहीं किया गया; किया गया है उर ! परंतु मूल में उर और उरोज दोनों में से किसी के हुलाने की साफ़-साफ़ बात नहीं। उरोज-स्पर्श का अर्थ ध्वनि से ज्ञात है। ध्वनि ही में रस है; ध्वनि ही में आनंद है। "हुलावति" कहने की आवश्यकता नहीं। भवभूति ने दूसरा चरण बहुत समझ-बूझकर लिखा है और लिखकर अपनी अखंड सहृदयता का परिचय दिया है। मूल कवि की वह सहृदयता अनुवाद में ख़ाक में मिला दी गई। मूल में जितने पदार्थों के नाम आये हैं, उन सब के संसर्ग के लगाने की उत्प्रेक्षा है; परंतु अनुवाद में केवल कपूर लगाने की है। सारांश यह कि मूल में जो भाव है और उस भाव में जो रस है उसको दर्शित करने में असमर्थ होकर अनुवादकजी ने किसी प्रकार चौपाई के चार पैर-पाँव खड़े कर दिये !

एक और उदाहरण लीजिए। मन-ही-मन माधव कहता है —

पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चा-

दन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम् ।

उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-

मासक्ततिर्यगपवर्तितदृष्टिवक्त्रम् ॥

भावार्थ—मुझमें अनुरक्त होने के कारण तिरछा देखने-वाली और फूले हुए मनोहर सुवर्ण-सरोरुह के समान मुख

धारण करनेवाली उस मालती ही को मैं यहाँ-वहाँ, आगे-पीछे, भीतर-बाहर, सब कहीं विद्यमान देख रहा हूँ। इसका अनुवाद एक दोहे में समाप्त कर दिया गया है। देखिए—

छिनछिन बिकसे कमल-सी खुले कछुक दग ओर ;
बाहर-भीतर लखि परै घूमति-सी चहुँ ओर।

भवभूति की कविता की इस विडंबना का कहीं ठिकाना है। इसीलिए हम कहते हैं कि संस्कृत न जाननेवालों को उनके नाटकों का पूरा-पूरा आनंद नहीं मिल सकता। भवभूति की मधुमयी कविता का स्वाद जिनको लेना हो, वे यदि संस्कृत से अनभिज्ञ हों तो, उन्हें वह भाषा सीखनी चाहिए, अथवा जब तक हिंदी में और कोई अच्छा अनुवाद न निकले, तब तक विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के "भवभूति"-नामक मराठी-निबंध का हिंदी-अनुवाद पढ़कर संतोष करना चाहिए।

जनवरी १९०२

लोलिंबराज

भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियों और विद्वानों के जीवन-चरित प्रकाशित होने से अनेक लाभ हैं। ऐसे चरितों के द्वारा उन-उन कवियों और विद्वानों की अलौकिक प्रतिभा के उदाहरणों आदि से पढ़नेवालों का बहुत मनोरंजन होता है। संस्कृत-कवियों के वृत्तज्ञान से तो समधिक और भी लाभ होता है। संस्कृत भाषा हमारी मातृभाषा हिंदी की जननी है और उसके परिशीलन की ओर प्रवृत्त होना इस प्रांत ही के नहीं, इस सारे देश के निवासियों का परम धर्म है। संस्कृत के कवियों की कविता की आलोचना पढ़ने और उनके चरित का थोड़ा-बहुत ज्ञान होने से उस भाषा की ओर मनुष्यों की प्रवृत्ति होना अधिक संभव है।

लोलिंबराज से वैद्यक विद्या के जाननेवाले संस्कृतज्ञ, औरों की अपेक्षा अधिक परिचित हैं; क्योंकि लोलिंबराज का प्रसिद्ध ग्रंथ वैद्यजीवन चिकित्सा-शास्त्र का ग्रंथ है। परंतु लोलिंबराज वैद्य ही नहीं, किंतु एक प्रसिद्ध कवि और रसिक थे।

किसी प्राचीन विद्वान् के विषय में कुछ लिखने के लिए लेखनी उठाते ही पहले यह प्रश्न उठता है कि वह

कौन था, कब हुआ, कहाँ रहा और कौन-कौन ग्रंथ उसने लिखे। परंतु इन बातों का उत्तर देने में प्रायः हत-सफल होना पड़ता है। यह खेद की बात है; परंतु क्या किया जाय, वश नहीं। किसी-किसी बिरले विद्वान् को छोड़कर औरों ने अपने ग्रंथों में, अपने विषय में, कुछ लिखा ही नहीं। और, लिखा भी है तो बहुत थोड़ा। जिसने कुछ लिखा भी है उसने अपने लेख में ऐसी अत्युक्तियाँ कही हैं, और उस लेख को कवितारूपी वेष्टन से इतना लपेटा है, कि उसमें से ऐतिहासिक तत्त्व ढूँढ निकालना बड़ा कठिन काम है। लोलिंबराज भी उपर्युक्त दोष से नहीं बचे। ये अपने ग्रंथों में अपने लिए कहते हैं—

"हमने अपनी जंघा का मांस अग्नि में हवन करके पार्वती को प्रसन्न किया। पार्वती ने हमको दूध पिलाया। हम एक घड़ी में १०० श्लोक बना सकते हैं। हम कवियों के नायक हैं। हम कवियों के बादशाह हैं। गानविद्या जाननेवालों की हम सीमा हैं। राजाओं की सभा के हम भूषण हैं।"

यह सब कुछ अपनी प्रशंसा में आपने लिखा; परंतु यह न लिखा कि आप कहाँ उत्पन्न हुए; कब उत्पन्न हुए; और कौन-कौन ग्रंथ आपने बनाये। अस्तु।

लोलिंबराज के बनाये हुए तीन ग्रंथ पाये जाते हैं। वैद्य-जीवन, वैद्यावतंस और हरिविलास। ये तीनों छप गए हैं। इनके सिवा और भी चार ग्रंथों का पता चलता है, जो

लोलिंबराज के बनाये हुए हैं। इनके नाम हैं—चमत्कार-चिंतामणि, रत्नकलाचरित, वैद्यविलास और लोलिंबराजीय। पर ये हमारे देखने में नहीं आये और शायद छपे भी नहीं। उनके प्रसिद्ध तीन ग्रंथों में से पहले दो वैद्यक विषय के हैं और अंतिम में कृष्ण का चरित है। इन ग्रंथों में पहला ग्रंथ वैद्यजीवन ही अधिक प्रसिद्ध है। तीसरे, अर्थात् हरिविलास में, नंद के घर कृष्ण के पहुँचाये जाने से लेकर उद्धव-संदेश तक की कथा है। काशी से निकलनेवाली काशीविद्या-सुधा-निधि-नामक संस्कृत-पुस्तक के दूसरे भाग के सोलहवें अंक में, लोलिंबराज के विषय में, पंडित बेचनराम शर्मा इस प्रकार लिखते हैं—

दिवाकर सूरि के सुत लोलिंबराज राजा भोज के सम-कालीन, सूर्य-नामक नरेश के पुत्र, हरिहर की सभा के पंडित थे। वे दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे; बड़े विषयी थे; महा-मूर्ख थे। उनका बड़ा भाई जीविका के लिए देश-विदेश घूमा करता था और वे दिन-रात न-जाने कहाँ रहकर भोजन के समय घर में उपस्थित होते थे और अपने बड़े भाई की स्त्री के परोसे हुए भोजन को आकंठ खाकर फिर बाहर चले जाते थे। एक दिन उनकी दुर्वृत्ति से अत्यंत खिन्न होकर उनके भाई की स्त्री ने उनके सामने से थाली खींच ली और क्रुद्ध होकर कहा—"रे दुष्ट! घर से आज ही तू निकल जा। आज तक व्यर्थ ही मैंने तेरा पालन-पोषण किया।" ये वाक्य

लोलिम्बराज को विष में बुझाये हुए बाण के समान लगे। वे तुरंत घर से बाहर हो गये और दक्षिण के सप्तशृंग नामक पर्वत पर जाकर वहाँ स्थापित की हुई अट्ठारह भुजावाली देवी को, विद्याप्राप्ति के निमित्त, प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने लगे। लोलिम्बराज की तपस्या से प्रसन्न होकर देवी ने उनसे 'तथास्तु' कहकर उनकी कामना पूरी की। तब से लोलिम्बराज महाकवि, महापंडित, महान् गायक और महान् वैद्य हो गये।

वेचनरामजी ने इस वार्ता को 'जनश्रुति' कहा है। यद्यपि इस विषय का प्रामाणिक लेख हमें कहीं नहीं मिला, तथापि इसकी कुछ सूचना लोलिम्बराज के ग्रंथों में मिलती है। यथा—

रत्नं वामदृशां दृशां सुखकरं श्रीसप्तशृंगास्पदं
स्पष्टाष्टादशबाहु तद्भगवतो भर्गस्य भाग्यं भजे।
यद्भक्तेन मया घनस्तनि ! घनीभूतं समुत्पाद्यते
पद्यानां शतमङ्गनाधरसुधास्पर्धाविधानोद्धुरम्॥

वैद्यजीवन में लोलिम्बराज अपनी स्त्री से कहते हैं—हे घनस्तनि ! स्त्रियों में रत्नस्वरूपिणी, नेत्रानंददायिनी, सप्तशृंगपर्वतनिवासिनी, अट्ठारह भुजावाली, भगवान् वामदेव की उस शक्ति का मैं भजन करता हूँ जिसका भक्त मैं, सुलोचनियों की अधर-सुधा की स्पर्द्धा करनेवाले सौ श्लोक, एक घड़ी में, रच सकता हूँ।

इससे लोलिंबराज का शाक्त होना और सप्तशृंग-स्थित अष्टादश-भुजावाली देवी की उपासना करना सिद्ध है। इससे यह भी सिद्ध है कि वे दाक्षिणात्य थे; क्योंकि सप्तशृंग-पर्वत दक्षिण ही में है। देवी की उपासना का परिचय लोलिंबराज अपने वैद्यावतंस ग्रंथ में भी देते हैं। वहाँ आप कहते हैं—

> हुतवहहुतजंघाजानुमांसप्रभावा-
>
> द्विगतगिरिजायाः स्तन्यपीयूषपानः।
>
> रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसं
>
> कविकुलसुलतानो लाललोलिम्बराजः॥

अर्थात् जंघा और गाँठ के मांस को काट-काटकर अग्नि में होम करने के प्रभाव से प्रसन्न होनेवाली पार्वती के दुग्ध-रूपी अमृत का पान प्राप्त करनेवाला, कविकुल का सुल्तान (बादशाह), लोलिंबराज, चरक आदि ग्रंथों को देखकर वैद्यावतंस की रचना करता है।

गिरिजा ने प्रसन्न होकर जिसे पुत्रवत् अपना स्तन-पान कराया, वह कवियों का बादशाह हो गया तो क्या आश्चर्य! उसे कवियों, वैद्यों, ज्योतिषियों, गायकों और सभी विषयों के विद्वानों का शाहंशाह होना चाहिए। पंडित गट्टूलाल और अंबिकादत्त व्यास इत्यादि आधुनिक विद्वान् भी शरीर के मांस का एक भी टुकड़ा हवन किये बिना ही एक घड़ी में सौ अनुष्टुप् श्लोकों की रचना कर सकते

थे। अतः लोलिंबराज की गर्वोक्ति कोई गर्वोक्ति न हुई। गिरिजा का स्तन-पान पाकर यदि गणेश और कार्त्तिकेय की बराबरी उन्होंने न की तो क्या किया! हम यह नहीं कहते कि लोलिंबराज की उक्ति मृषा है; नहीं, पार्वती उन पर अवश्य प्रसन्न हुई होंगी। हम यह कहते हैं कि पार्वती की प्रसन्नता का कोई विशेष लक्षण लोलिंबराज की कृति में नहीं मिलता। लोलिंबराज के तीनों ग्रंथ, जो उपलब्ध हुए हैं, बहुत छोटे-छोटे हैं। यद्यपि उनकी कविता सरस और प्रासादिक है, तथापि वह कालिदास, भवभूति और श्रीहर्ष आदि की कविता की बराबरी नहीं कर सकती, और इन कवियों को शायद गिरिजा के स्तन-पान का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था। संभव है, लोलिंबराज ने और कोई अद्भुत ग्रंथ बनाये हों, जिनका पता अभी तक किसी को न लगा हो, अथवा देश-विप्लव के कारण वे नष्ट हो गये हों।

ऊपर जिस जनश्रुति का उल्लेख किया गया है उसमें कही गई इस बात का प्रमाण लोलिंबराज के लेख से मिल गया कि वे दाक्षिणात्य थे और सप्तशृंग-पर्वत पर उन्होंने देवी की उपासना की थी। परंतु इस बात का पता ठीक-ठीक नहीं लगता कि वे किस समय हुए। हरिविलास-काव्य के प्रति सर्ग के अंत में एक श्लोक है, जिसका पाठ सब सर्गों में प्रायः एक ही-सा है। दो सर्गों में, तीसरी पंक्ति में, कुछ अंतर है; और कहीं नहीं। वे श्लोक ये हैं—

नानागुणैरवनिमण्डलमण्डनस्य
श्रीसूर्यसूनुहरिभूमिभुजो नियोगात् ।
त्रैलोक्यकौतुककरं क्रियते स्म काव्यं
लोलिम्बराजकविना कविनायकेन ॥

अर्थात्, अनेक गुणों के कारण भूमंडल के मंडन, सूर्य-नामक राजा के पुत्र, हरि-नामक राजा की आज्ञा से, कवियों के नायक लोलिम्बराज कवि ने, तीनों लोकों में कुतूहल उत्पन्न करनेवाले इस काव्य की रचना की। इससे जनश्रुति की यह बात भी प्रमाणित हो गई कि सूर्य राजा के पुत्र हरि राजा की सभा को लोलिम्बराजजी ने सुशोभित किया था। इस श्लोक का "त्रैलोक्यकौतुककर" पद ध्यान में रखने योग्य है। इस काव्य में केवल पाँच सर्ग हैं। इन पाँच सर्गों की पद्य-संख्या इस प्रकार है—

सर्ग	पद्य
१	३४
२	३५
३	७०
४	७७
५	६८
जोड़ ...	३१४

हम नहीं कह सकते कि इतने छोटे काव्य के लिए "त्रैलोक्यकौतुककर" कहना किस प्रकार शोभा दे सकता

है। यदि हम यह कहें कि छोटा होकर भी उसमें कोई बहुत ही बड़ी विलक्षणता है, सो भी नहीं। कविता अवश्य ललित है, सरस है, आलंकारिक है; परंतु ये गुण ऐसे नहीं कि इनको देखकर अथवा हरिविलास की कविता का आस्वादन करके त्रिलोक को कौतुक हो और वह सहसा चौंक पड़े।

पंडित मेघनराम लोलिंबराज को भोज का समकालीन बतलाते हैं और अपने कथन के प्रमाण में यह श्लोक देते हैं—

भो लोलिंब कवे ! कुरु प्रणमनं किं स्थाणुवत्स्थीयते
कस्मै भोजनृपाल ! बालशशिने नायं शशी वर्तते।
किं तद्व्योम्नि विभाति चास्तसमये चण्डद्युतेर्वाजिनः
पादभ्रष्टमिदं जवाद्विगलितं खे राजतं राजते॥

इसका भावार्थ है—

भोज—हे लोलिंब कवि ! ठूँठ के समान क्या खड़े हो ? क्यों नहीं प्रणाम करते ?

लोलिंबराज—भोजराज ! मैं किसको प्रणाम करूँ ?

भोज—बाल-चंद्रमा को।

लो०—यह तो चंद्रमा नहीं।

भोज—फिर सूर्यास्त के समय आकाश में यह क्या दिखाई दे रहा है ?

लो०—यह तो चाँदी की बनी हुई, सूर्य के किसी घोड़े की नाल है, जो वेग से दौड़ते समय आकाश में गिर गई है !

यह श्लोक अपह्नुति-अलंकार का एक बहुत अच्छा उदाहरण है; परंतु इतने से सोलिंबराज को भोज का समकालीन बतलाना युक्तिसंगत नहीं। हम नहीं कह सकते कि यह पद्य किस सोलिंब से संबंध रखता है; वैद्यजीवन आदि के कर्ता लोलिंबराज से, अथवा इस नाम के और किसी दूसरे कवि से। फिर इसका भी क्या प्रमाण कि किसी ने भोज के अनंतर उनके और लोलिंबराज के नाम से यह श्लोक नहीं बना डाला? बल्लाल-मिश्र के संकलित किये हुए भोजप्रबंध को जब हम देखते हैं तब वहाँ कालिदास, भारवि, भवभूति, माघ, मल्लिनाथ, श्रीहर्ष आदि सभी कवियों की उक्तियाँ भोज के विषय में पाई जाती हैं। जिन कवियों का वहाँ नाम आया है उनमें परस्पर सैकड़ों वर्ष का अंतर है। इसीलिए ऐसे श्लोकों से ऐतिहासिक तत्व का पता लगाना कठिन है। फिर, भोज एक विद्वान् राजा था; वह कवियों को आदर की दृष्टि से देखता था। अतएव यह कहना कि उसने लोलिंबराज को ठूँठ की उपमा दी, मानों उसके सिर पर अरसिकता और असभ्यता का मुकुट रखना है।

लोलिंबराज की कविता में आधुनिकता के चिह्न पाये जाते हैं। उनमें से फ़ारसी के शब्द "सुलतान" और "पादशाह" बड़े ही जाज्वल्यमान चिह्न हैं। ऊपर एक श्लोक दिया जा चुका है जिसमें लोलिंबराज ने "सुलतान" शब्द का

प्रयोग किया है। एक श्लोक अब हम वैद्यावतंस से यहाँ उद्धृत करते हैं, जिसमें "पादशाह" शब्द आया है—

समस्तपृथ्वीपतिपूजनीयो
दिगङ्गनाश्लिष्टयशःशरीरः ।
गुणिप्रियं ग्रन्थममुं व्यतानी-
ल्लोलिम्बराजः कविपादशाहः ॥

दिशारूपिणी स्त्रियों ने जिसके यशोरूपी शरीर का आलिंगन किया है; जो समस्त राज-वर्ग का पूजनीय है, जो कवियों का पादशाह है—ऐसे लोलिंबराज ने गुणवानों के प्रीतिपात्र इस ग्रंथ की रचना की।

गुणवानों के प्रीतिपात्र इस वैद्यावतंस में केवल ५८ श्लोक हैं और उनमें वैद्यकशास्त्र के अनुसार पदार्थों के गुण-दोष का वर्णन है। इस पद्य में अपने को सब राजाओं का पूजनीय कहकर और अपने यशःशरीर को दिगंत में पहुँचाकर लोलिंब-राजजी कवियों के बादशाह बन गये हैं। ये "पादशाह" और "सुलतान" शब्द इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि उस समय मुसलमानों का प्रवेश दक्षिण में हो गया था और उनके द्वारा बहुत-से फ़ारसी-शब्द लोगों के कान तक पहुँच गये थे। दक्षिण में बीजापुर का मुसलमानी राज्य बहुत पुराना है। शिवाजी के कई सौ वर्ष पहले वहाँ मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया था। अतः यह जान पड़ता है कि मुसलमानों का प्रवेश दक्षिण में होने के अनंतर लोलिंबराज

का उदय हुआ है। अर्थात् ये कोई चार-पाँच सौ वर्ष के इधर ही हुए हैं। भोज के समय लोलिंबराज का होना, बिना किसी दृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण के, नहीं माना जा सकता। लोलिंबराज ने जिन सूर्य और हरिहर राजाओं

---

* महाजनमंडल-नामक गुजराती पुस्तक के कर्ता ने लोलिंबराज का होना शक १५५६ अर्थात् १६३४ ईसवी के लगभग माना है। इससे हमारे कथन की पुष्टि होती है। इस पुस्तक में लिखा है कि लोलिंबराज जुन्नर के निवासी थे। यह नगर दक्षिण में पूना-ज़िले में है। परंतु ये सब बातें निराधार लिखी गई हैं। इनका कोई प्रमाण इस पुस्तक में नहीं। लोलिंबराज के तपस्या करने और अपने शरीर का मांस हवन आदि के विषय में भी इसमें प्रायः वही बातें लिखी हैं जो हमने लिखी हैं। इस पुस्तक में इतना अधिक लिखा है कि लोलिंबराज की स्त्री रत्नकला "बादशाह" की लड़की थी। बादशाह ने लोलिंबराज से पूछा कि हमारी गर्भवती रानी के लड़का होगा या लड़की। पूछने के समय बादशाह की युवा कन्या उनके पास खड़ी थी। उसे देखकर लोलिंबराज ने कहा कि मेरा उत्तर ठीक निकलने पर यदि आप मुझे यह कन्या देना स्वीकार करें तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर बतलाता हूँ। बादशाह ने यह बात अंगीकार कर ली। लोलिंबराज ने कहा, आपकी रानी के पुत्र होगा। पुत्र ही हुआ और वह कन्या लोलिंबराज को मिल गई। उसके साथ उन्होंने विवाह किया और उसका नाम रत्नकला रक्खा। यदि यह बात सत्य है तो लोलिंबराज भी हमारे पंडितराज जगन्नाथ राय के साथी हुए। परंतु महाजनमंडल के कर्ता ने इन बातों का कोई प्रमाण नहीं दिया। यह भी नहीं लिखा कि यह "बादशाह" कौन था और कहाँ का था।

बादशाह की युवा लड़की का एक अपरिचित के सामने, अपने पिता के पास, खड़ा रहना हमें तो संभव नहीं जान पड़ता।

का नाम अपने ग्रंथों में दिया है उनका कुछ भी पता नहीं चलता। चोल, कर्णाटक, पांड्य और आंध्रदेश के राजाओं की जो नामावली अब तक ज्ञात हुई है उसमें इन राजाओं का नाम नहीं। जान पड़ता है, ये कोई छोटे मांडलिक राजा थे। वैद्यक का प्रसिद्ध ग्रंथ वाग्भट्ट, चरक और सुश्रुत से बहुत पीछे का है। इस वाग्भट्ट का उल्लेख लोलिंबराज ने अपने वैद्यावतंस में किया है, जिससे यह सिद्ध है कि लोलिंबराज वाग्भट्ट के पीछे हुए हैं। और वाग्भट्ट का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है।

लोलिंबराज ने अपने मुँह अपनी मनमानी प्रशंसा की है। ऐसी प्रशंसा के कई उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। यहाँ पर एक उदाहरण हम और देते हैं, क्योंकि उसमें उन्होंने अपने पिता का नाम लिखा है। यह श्लोक वैद्य-जीवन के अंत में है—

आयुर्वेदवचोविचारसमये धन्वन्तरिः केऽलं
सीमा गानविदां दिवाकरसुधाम्भोधित्रयामापतिः।
उत्तंसः कवितावतां मतिमतां भूभृत्सभाभूषणं
कान्ताकथाऽकृतवैद्यजीवनमिदं लोलिम्बराजः कविः॥

अर्थात्, आयुर्वेद में जो धन्वंतरि के समान है; गानविद्या के जाननेवालों की जो सीमा है; दिवाकररूपी सुधासमुद्र का जो चंद्रमा है; कवियों का जो शिरोरत्न है; और राजाओं

की सभा का जो भूषण है—ऐसे लोलिंबराज कवि ने, अपनी स्त्री के कहने से, अथवा अपनी स्त्री को संबोधन करके, इस वैद्यजीवन ग्रंथ की रचना की है। इस पद्य में और जो कुछ है सो तो है ही, एक बात इससे यह जानी गई कि लोलिंबराज की उत्पत्ति दिवाकर से हुई; अर्थात् उनके पिता का नाम दिवाकर था। यह नाम वैद्यजीवन के आरंभ में एक बार और आया है। वहाँ पर लोलिंबराज ने "दिवाकरात्मजेन" लिखा है, जिससे सूर्य का भी अर्थ निकलता है, क्योंकि सूर्य को भी दिवाकर कहते हैं; परंतु यहाँ, ऊपर दिये गये श्लोक से, केवल एक ही अर्थ निकलता है।

यहाँ तक जो कुछ लिखा गया उससे केवल इतना ही ज्ञात हुआ कि लोलिंबराज दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे; वे शक्ति के उपासक थे; सप्तशृंग-पर्वत पर उन्होंने देवी की आराधना की थी; वे आशुकवि थे; सुगायक थे; चतुर वैद्य थे और हरिहर-नरेश की सभा के पंडित थे।

वैद्यजीवन और हरिविलास में लोलिंबराज ने अपनी स्त्री का भी नाम दिया है। हरिविलास के पंचम सर्ग का १६वाँ श्लोक यह है—

सुजनैः कुजनैरपि रत्नकला-
रमणस्य कवेः कविताश्रवणात्।
रमणीकणितं मुरलीरणितं
भ्रमरीभणितं तृणवद्गणितम्॥

अर्थात्, रत्नकला के स्वामी (लोलिंबराज) कवि की कविता सुनकर सज्जनों ने ही नहीं, दुर्जनों ने भी, कामिनी के कोमल आलाप को, मुरली की मनोहर तान को और भ्रमरी की मधुर गुंजार को तृणवत् समझा! क्यों न हो, कवीश्वरजी, आपके कोई-कोई पद्य, निःसंदेह बड़े ही माधुर्य-पूर्ण हैं। इस पद्य में "रत्नकलारमणस्य" लिखकर अपनी स्त्री का नाम आपने रत्नकला बतलाया। वैद्यजीवन में कई स्थलों पर स्पष्टतया "रत्नकले" कहकर लोलिंबराज ने अपनी कविरानी का संबोधन किया है। लोलिंबराज के कहने से जान पड़ता है कि उनकी स्त्री भी विदुषी थी। वैद्यजीवन में उन्होंने अपनी स्त्री से कहा है कि तू रसिका है; तू विद्वानों के द्वारा वंदन की जाने-योग्य है; तू साहित्य में निपुण है; तू कलानिधि है; तू पंडिता है; तेरी बुद्धि कुश के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण है; तू गाने में प्रवीण है; और तू सब स्त्रियों की शिरोभूषण है—इत्यादि। यह सोने में सुगंध हुई जो लोलिंबराज-ऐसे उद्भट विद्वान् और कवि को रत्नकला के समान विदुषी और रसिका स्त्री मिली; परंतु हम यह नहीं कह सकते कि भगवती अष्टभुजा से वरदान पाने के अनंतर उनको रत्नकला-रूपी रत्न हाथ लगा था, अथवा उसके पहले ही, उनकी मूर्ख-दशा ही में, उसके साथ उनका विवाह हो गया था! अस्तु।

लोलिंबराज के ग्रंथों में वैद्यावतंस बहुत ही छोटी पुस्तक है। जैसा ऊपर कहा गया है, उसमें केवल ५८ श्लोक हैं और उनमें पदार्थों के गुण-दोष का विवरण है। वैद्यावतंस के आदि और अंत में लोलिंबराज ने मंगलाचरण के जो दो श्लोक लिखे हैं वे, सानुप्रास होने के कारण, बहुत ही मनोहर हैं। उनमें से पहला श्लोक यह है—

अनुकृतमरकतवर्णा शोभितकर्णा कदम्बकुसुमेन।
नखमुखमुखरितवीणा मधुरं क्षीणा शिवा शिवं कुर्यात्॥

मरकतमणि के वर्ण का जिसने अनुकरण किया है; कदंब-पुष्प से जिसके कान शोभित हैं; नख से जो वीणा को बजा रही है—ऐसी क्षीणकटी शिवा (पार्वती) मंगल करे!

दूसरा, अर्थात् वैद्यावतंस का ५७वाँ श्लोक यह है—

अधरन्यक्कृतबिंबा जितशशिबिम्बा मुखप्रभया।
गमनाविरलविलम्बा विपुलनितम्बा शिवा शिवं कुर्यात्॥

अपने अधरों से बिंबाफल का धिक्कार करनेवाली और मुख की कांति से चंद्रबिंब को जीतनेवाली, मंदगामिनी तथा विस्तृत-नितंब-शालिनी शिवा मंगल करे!

यह अनुमान होता है कि वैद्यावतंस लोलिंबराज का पहला ग्रंथ है। इसमें इन दो श्लोकों के अतिरिक्त, हमारी समझ में, एक ही और श्लोक है जिसे बहुत अच्छी कविता कह सकते हैं। करेले के गुणों का वर्णन करते हुए लोलिंब-राज उसकी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—

जाम्बूनदीयां प्रतिमां यदीयां वक्षःस्थले वामदृशो वहन्ति ।
अशेषशाकावलिमंडनत्वं तत्कारवेल्लं न लभेत कस्मात् ?

अर्थात्, जिसकी सुवर्ण की प्रतिमा को स्त्रियाँ अपने हृदय पर धारण करती हैं वह करेला क्यों न सब शाकों में श्रेष्ठ समझा जाय ? इसमें जो ध्वनि है वह सहज ही ध्यान में आ जाने-योग्य है ।

रचना की प्रणाली और कविता के गौरव-लाघव का विचार करने से जान पड़ता है कि हरिविलास को लोलिम्बराज ने वैद्यजीवन के पीछे बनाया है । जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हरिविलास में केवल ५ सर्ग हैं और सब सर्गों को मिलाकर २१४ श्लोक हैं । इस काव्य में उद्धव-संदेश तक कृष्ण की लीला का संक्षिप्त वर्णन है । इसकी कविता प्रायः सरल है । लोलिम्बराज की कविता का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह सरल होकर सरस भी है । हरिविलास के कोई-कोई पद्य बहुत ही हृदयग्राही हैं । यहाँ पर हम केवल दो पद्य देकर संतोष करेंगे । वसंत-वर्णन—

वारस्त्रीव वनस्थली नवनवां शोभां बभाराग्वहं
पान्थान्पीडयति स्म तस्कर इव क्रूरैः शरैर्मन्मथः ।
शृंगारः सगुणः समापतिरिव प्राप प्रतिष्ठां परां
रात्रिः स्वीकुरुते स्म मुग्धललनालज्जेव कार्श्यं क्रमात् ॥

वार-वनिता के समान वन की भूमि ने प्रतिदिन नई-नई शोभा को धारण किया; चोर के समान मन्मथ पथिकों को

कठोर बाणों से पीड़ा पहुँचाने लगा; गुणवान् राजा के समान शृंगार-रस ने ऊँची प्रतिष्ठा पाई; और नवला कामिनी की लज्जा के समान रात्रि ने क्रम-क्रम से कृशता स्वीकार की, अर्थात् छोटा होना आरंभ किया। देखिए, कैसी मनोहर उपमाओं के द्वारा, कैसी सरल रीति से, लोलिंबराज ने वसंत का आगमन वर्णन किया है। इनकी उपमाएँ प्रायः बहुत अच्छी हैं। हरिविलास से शरद्वर्णन का एक श्लोक हम और उद्धृत करते हैं—

> वृद्धाङ्गनेव विजहौ सरितुज्ज्वलत्वं
>
> वेदान्तिनामिव मतं शुचि नीरमासीत्।
>
> चन्द्रे प्रभा सुवनितास्य इवाद्भुताभू-
>
> द्विद्वत्कवित्वमिव केकिरुतं न रेजे॥

वृद्ध स्त्री के समान नदियों ने अपनी उज्ज्वलता छोड़ दी; वेदांतियों के मत के समान जल स्वच्छ हो गया; कामिनी के मुखमंडल के समान चंद्रमा अधिक शोभायमान हुआ; और विद्वानों की कविता के समान मोरों की केका अशोभक हुई। इस पद्य के चौथे चरण में लोलिंबराज ने एक अमूल्य बात कही है। सच है, विद्वान् होने से ही कोई कवि नहीं हो जाता। यदि उसमें कवित्व-शक्ति का स्वाभाविक बीज नहीं, तो मनुष्य चाहे जितना उद्भट विद्वान् हो, उसकी कविता कदापि सरस और मनोहारिणी नहीं होती। रस ही कविता का प्राण है और जो यथार्थ कवि है उनकी कविता

में रस अवश्य होता है। नीरस कविता कविता ही नहीं।
लोलिंबराज ने वैद्यजीवन में ठीक कहा है—

यतो न नीरसा भाति कविताकुलकामिनी।

अर्थात्, कविता-रूपिणी कुल-कामिनी नीरस होने से शोभा नहीं पाती।

लोलिंबराज के ग्रंथों में वैद्यजीवन सबसे श्रेष्ठ है। यद्यपि इसका विषय वैद्यक है, तथापि इसे काव्य ही कहना चाहिए। इसमें काव्य के प्रायः सभी लक्षण विद्यमान हैं। कोई श्लोक ऐसा नहीं जिसमें लोलिंबराज ने कोई-न-कोई मनोरंजक उक्ति न कही हो। इसमें उन्होंने अपनी अच्छी कवित्व-शक्ति दिखाई है। पार्वती के स्तन-पान करने का प्रभाव यदि कहीं कुछ दर्शित होता है तो इसी ग्रंथ में दर्शित होता है। हमने अनेक अनुभवशाली वैद्यों से सुना है कि वैद्यजीवन में कही गई ओषधियाँ भी सब प्रायः अनुभूत अतएव अव्यर्थ हैं। इसमें जो काढ़े हैं वे, सुनते हैं, बिना अपना गुण दिखाये नहीं रहते। इस ग्रंथ को लोलिंबराज ने अपनी स्त्री रत्नकला को संबोधन करके बनाया है और किसी-किसी श्लोक में उससे अनोखे-अनोखे विनोद किये हैं। अधिकांश ग्रंथ शृंगारिक भावों से भरा हुआ है। इसमें कहीं उपमा, कहीं रूपक, कहीं कूट, कहीं ध्वनि, कहीं अंतर्लापिका, कहीं बहिर्लापिका, कहीं कर्ता गुप्त, कहीं क्रिया गुप्त, कहीं कुछ, कहीं कुछ है। लोलिंबराज ने इसे हृदयहारी बनाने में कोई कसर नहीं की।

इसमें सब मिलाकर पाँच विलास हैं, और प्रत्येक विलास में नीचे लिखे अनुसार विषययोजना और श्लोक-संख्या है—

विलास	विषय	श्लोक-संख्या
प्रथम	ज्वर-प्रतीकार	७६
द्वितीय	अतीसार और ग्रहणी-प्रतीकार	२६
तृतीय	कासश्वास-प्रतीकार	३९
चतुर्थ	राजयक्ष्मादि-रोग-प्रतीकार	४३
पंचम	वाजीकरण	२१
	जोड़ ...	२०५

अब लोलिंबराज की रसिकता के दो-चार उदाहरण सुनिए। वैद्यजीवन के आरंभ में आप कहते हैं—

येषां न चेतो ललनासु लग्नं
मग्नं न साहित्यसुधासमुद्रे ।
ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयासा-
नन्धा यथा वारवधूविलासान् ॥

जिन्होंने साहित्यरूपी सुधा-समुद्र में डुबकी नहीं लगाई और जिनका मन ललनाओं में लीन नहीं, वे इस ग्रंथ की रचना करने में होनेवाले मेरे परिश्रम को उसी प्रकार न जान सकेंगे जिस प्रकार नेत्रहीन मनुष्य वार-वनिताओं के हाव-भावों को नहीं जान सकते। वैद्यजीवन बनाने में क्या आपको सचमुच ही बड़ा परिश्रम हुआ? एक घड़ी में सौ

श्लोक बनानेवाले को २०५ श्लोक लिखने में कितना श्रम हो सकता है? यह बात लोलिंबराज की बहुत यथार्थ है कि जिसे साहित्य-शास्त्र का ज्ञान नहीं वह कवि के कर्तव्य को अच्छी तरह नहीं जान सकता। श्रीकंठचरित में लिखा है—

> विना न साहित्यविदा परत्र
>
> गुणः कथञ्चित् प्रथते कवीनाम्।
>
> आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव
>
> विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः॥

अर्थात्, साहित्य-शास्त्र के ज्ञाता बिना, कवियों के गुण अच्छी तरह नहीं विस्तार पाते। तेल का बूँद पानी ही पर फैलता है।

लोलिंबराज की उपमाएँ बहुत अच्छी हैं। यद्यपि वे अद्भुत नहीं हैं, तथापि ऐसी चुटीली हैं कि उनके कारण उनकी कही हुई उक्ति हृदय में अंकित-सी हो जाती है। उनकी सारी उपमाएँ प्रायः शृंगार-रसात्मक हैं; तथापि उद्वेगजनक नहीं। दो-एक सुनिए—

> तृड्दाहमोहाः प्रशमं प्रयान्ति
>
> निम्बप्रवालोत्थितफेनलेपात्।
>
> यथा नराणां धनिनां धनानि
>
> समागमाद्वारविलासिनीनाम्॥

नीम के कोमल पत्तों के फेन का लेप करने से तृषा, दाह और मोह इस प्रकार नाश हो जाते हैं जिस प्रकार

वार-वनिताओं के समागम से धनी मनुष्यों का धन नाश हो जाता है।

चातुर्थिको नश्यति रामठस्य
घृतेन जीर्णेन युतस्य नस्यात्।
लीलावतीनां नवयौवनानां
मुखावलोकादिव साधुभावः॥

पुराने घी के साथ हींग का नास लेने से चातुर्थिक ज्वर उसी तरह चला जाता है जिस तरह नवयौवना कामिनियों के मुखावलोकन से मनुष्यों का साधुभाव न-मालूम कहाँ चला जाता है।

यद्यपि प्राचीन कवियों की कविता को उदाहरणवत् उद्धृत करने में कोई हानि नहीं, तथापि लोलिंबराज की विशेष रसिकता का परिचय हम नहीं देना चाहते। अतएव इस प्रकार का हम एक ही और उदाहरण देते हैं। लोलिंबराज को दो बातें बहुत ही विस्मयकारिणी ज्ञान पड़ती हैं। इस विषय में ये कहते हैं—

मम द्वयं विस्मयमातनोति
तिक्ताकषायो मुखतिक्तताघ्नः।
निपीडितांगोजसरोजकोशा
योषा प्रमोदं मधुरं प्रयाति॥

अर्थात्, दो बातों का विचार करके मुझे बड़ा विस्मय होता है। एक तो यह कि महा कड़ुई कुटकी का काढ़ा

पीने से मुँह कड़ुआ न होकर उलटा उसका कड़ुवापन जाता रहता है; और दूसरी बात यह कि, * * रूपी कमल की कलिकाओं का पीड़न करने से कामिनी को पीड़ा न होकर उलटा उसे आनंद होता है !

एक द्व्यर्थिक श्लोक सुनिए—

अयि प्रिये ! प्रीतिभृतां मुरारौ
किं बालकश्रीघनधान्यविश्वैः ।
यस्याप्यतीसाररुजो न तस्य
किं बालकश्रीघनधान्यविश्वैः ॥

हे प्रिये ! जिनको कृष्ण से प्रेम है उनको बालक, श्री, धन-धान्य और विश्व से क्या प्रयोजन ? अर्थात् कुछ भी नहीं। और जिनके अतीसार का रोग नहीं उनको भी इन वस्तुओं से क्या प्रयोजन ? यहाँ पर "बालकश्रीघनधान्य-विश्वैः" यह पद द्व्यर्थिक है । कृष्ण के पक्ष में उसका यह अर्थ है—

बालक—लड़के-बाले

श्री—लक्ष्मी

घनधान्य —धान्य-बाहुल्य

विश्व—संसार

अर्थात्, विरक्तों को इनसे कोई प्रयोजन नहीं। अतीसार के पक्ष में इन्हीं शब्दों का दूसरा अर्थ होता है । यथा—

बालक—सुगंधवाला

धी—बेल

घन—नागरमोथा

धान्य—धनियाँ

विश्व—सोंठ

अर्थात्, जिसको अतीसार नहीं है उसे इन ओषधियों के देने से कोई लाभ नहीं। इनके काढ़े से अतीसार जाता रहता है।

एक छोटा-सा कूट श्लोक सुनिए—

> रावणस्य सुतो हन्यात् मुखवारिजधारितः।
> श्वसनं कसनं चापि तमिवानिलनन्दनः॥

अर्थात्, मुखकमल में रखने से रावण का लड़का, श्वास और खाँसी दोनों का वैसे ही नाश करता है जैसे उसका (रावण के लड़के का) नाश पवनसुत ने किया था। हनुमान् के हाथ से मारे जानेवाले रावण के लड़के का नाम अक्ष था। अक्ष बहेड़े को कहते हैं। अर्थात् बहेड़े को मुँह में रखने से श्वास और खाँसी जाती रहती है।

लोलिम्बराज की एक बहिर्लापिका सुनाकर हम इस व्यापार से विरत होंगे—

> भिन्दन्ति के कुञ्जरकर्णपालिं
> किमव्ययं वक्ति वने नवोढा।
> सम्बोधनं नुः किमु रक्तपित्ते
> निघ्नन्ति वासोक ! वद त्वमेव॥

हे वामोरु (अच्छी जंघावाली) ! तू मुझे यह बतला कि हाथियों के मस्तक का विदारण कौन करता है ? उत्तर— 'सिंहाः' । यह भी बतला कि नवला कामिनी रतोत्सव के समय किस अव्यय का उच्चारण बार-बार करती है ? उत्तर— 'न' । यह भी तू बतला कि 'नृ' शब्द का संबोधन क्या है ? उत्तर—'नः' । और यह भी बतला कि रक्त-पित्त का नाश कौन औषधि करती है ? उत्तर— 'सिंहाननः' । अर्थात् "सिंहाः, न, नः" इन तीनों शब्दों को एकत्र करने से 'न' आगे होने के कारण 'सिंहाः' के विसर्गों का लोप हो गया और 'सिंहाननः' शब्द सिद्ध हुआ । सिंहानन नाम अडूसे का है । अडूसे के काढ़े से रक्त-पित्त जाता रहता है ।

वैद्यजीवन की कविता बहुत मनोहारिणी है । परन्तु अब अधिक उदाहरण उद्धृत करने की ज़रूरत नहीं । लोलिंबराज की जितनी कविता उपलब्ध हुई है उससे यह प्रमाणित होता है कि वे अच्छे कवि थे । उनकी कविता में क्लिष्टता-दोष नहीं । यह उनके स्वाभाविक कवि होने का प्रमाण है ।

अप्रैल, १९१३

फ़ारसी-कवि हाफ़िज़

हाफ़िज़ फ़ारसी का बहुत बड़ा कवि हो गया है। उसे फ़ारसी के कवियों का शाहंशाह कहना चाहिए। गुलिस्ताँ और बोस्ताँ के लिखनेवाले शेख़सादी से भी, कविता में, उसकी बराबरी नहीं की जा सकती। कविता से जहाँ तक संबंध है हाफ़िज़ को फ़ारसी का कालिदास कहना चाहिए। हाफ़िज़ में कवित्व-शक्ति अपूर्व थी। वह स्वाभाविक कवि था। उसकी उक्तियाँ ऐसी भावगर्भित और ऐसी नैसर्गिक हैं कि पढ़ते ही हृदय पर विलक्षण प्रभाव उत्पन्न करती हैं। प्रेम, पूज्यभाव और आतंक—सभी—यथास्थान मन में आविर्भूत हुए बिना नहीं रहते। ऐसे गंभीर भाव, ऐसी हृदयद्रावक उक्तियाँ, सरल होकर भी ऐसी परिमार्जित भाषा, फ़ारसी में, हाफ़िज़ के "दीवान" में ही मिल सकती है; अन्यत्र बहुत कम। परंतु ऐसे महाकवि के जीवन का बहुत ही कम वृत्तांत जाना गया है।

हाफ़िज़ का नाम मुहम्मद शम्सउद्दीन है। हाफ़िज़ उसका तख़ल्लुस था। अपने दीवान में उसने इस तख़ल्लुस का बहुत ही अधिक प्रयोग किया है। इसीलिए वह अपने मुख्य नाम से प्रसिद्ध नहीं; तख़ल्लुस से ही प्रसिद्ध है।

हाफ़िज़ के माता-पिता अच्छी दशा में थे; परंतु हाफ़िज़ ने दरिद्रावस्था ही में अपनी उम्र बिताई। यह बात उसकी कविता से सूचित होती है। वह फ़ारस के शीराज़ नगर में, ईसा की चौदहवीं सदी के आरंभ में, उत्पन्न हुआ और वहीं बुड्ढा होकर मरा। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस सन्, किस महीने, और किस तारीख़ को उसका जन्म हुआ; परंतु उसके मरने का समय निश्चय-पूर्वक ज्ञात है। शीराज़ में उसकी जो क़ब्र है उस पर ७९१ हिजरी, अर्थात् १३७३ ईसवी, खुदा हुआ है। उस पर एक शायर ने उसके मरने की तारीख़ भी यह लिखी है—

چراغ اهل معنی خواجه حافظ
که شمع بود از نور تجلی
چو در خاک مصلی یافت منزل
بجو تاریخش از خاک مصلی

खिराग़े अहले मानी ख़्वाजः हाफ़िज़
कि शमए बूद अज़ नूरे तजल्ला
चु दर ख़ाके मुसल्ला याफ़्त मंज़िल
बिजो तारीख़श अज़ ख़ाके मुसल्ला

अर्थात्

अर्थवेत्ताओं के दीपक ख़्वाजा हाफ़िज़ ने, जो कि ख़ुदा के तेज की मशआल था, ख़ाके मुसल्ला (ईदगाह या नमाज़ पढ़ने की जगह) में स्थिति पाई। उसकी तारीख़

खाके मुसल्ला में ढूँढो (खाके मुसल्ला के अंक, अबजद के क़ायदे से, ७९१ होते हैं) इससे स्पष्ट है कि हाफ़िज़ को मरे कोई ५३० वर्ष हुए। परंतु उसे मरा क्यों कहना चाहिए। जब तक फ़ारसी-भाषा का अस्तित्व है और जब तक हाफ़िज़ का अलौकिक कवित्व उसके दीवान में विद्यमान है तब तक वह मृत नहीं; वह जीवित है। जिसका यशःशरीर बना है, उसके पार्थिव शरीर के नाश हो जाने में कोई क्षति नहीं।

हाफ़िज़ को अपनी जन्म-भूमि शीराज़ से बड़ा स्नेह था। उसने उसकी बहुत प्रशंसा की है। उसे एकांतवास अधिक पसंद था। साहित्य-प्रेम उसमें विलक्षण था। एकांत में पुस्तकावलोकन और कविता-निर्माण में ही वह अपना समय बहुत करके व्यतीत करता था। शीराज़, यज़्द, किरमान और इस्फ़हान के अधिकारी—शाहशुजा और शाहमंसूर का वह विशेष कृपापात्र था। १३९३ ईसवी में तैमूर ने शीराज़ पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। इस लड़ाई में हाफ़िज़ के पृष्ठ-पोषक पूर्वोक्त शाहद्वय की हार हुई। उस समय, सुनते हैं, हाफ़िज़ शीराज़ ही में था। हाफ़िज़ ने, एक पद्य में, अपने बहुत प्यारे शीराज़ी तुर्क के कपोल के ऊपर के तिल के लिए समरक़ंद और बुखारा नाम के दो प्रसिद्ध शहर दे डालने की उक्ति कही थी। वह पद्य ऐसा है—

اگر آن ترک شیرازی بدست آرد دل ما را
بخال هندوش بخشم سمرقند و بخارا را

अक्षरांतर

अगर आँ तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद् दिल मारा।
बख़ाले हिंदवश बख़्शम् समरक़ंदो बुख़ारा रा॥

ये दोनों शहर तैमूर के थे। तैमूर ने हाफ़िज़ का यह पद्य पढ़ा था। अतएव उसने हाफ़िज़ को अपने सम्मुख लाये जाने का हुक्म दिया। हाफ़िज़ लाया गया। उसे देखकर तैमूर ने पूछा—"क्या तू वही शख़्स है जिसने मेरे दो मशहूर शहर एक तुर्क के तिल पर दे डालने का साहस किया है ?" हाफ़िज़ ने इस प्रश्न का उत्तर बड़ी ही नम्रता से दिया। उसने कहा—"हाँ, जहाँपनाह ! ऐसी ही उदारताओं ने तो मुझे इस दरिद्रावस्था को पहुँचा दिया कि इस समय मैं आपकी दया का भिखारी होने आया हूँ"। यह उत्तर सुनकर हाफ़िज़ की प्रत्युत्पन्न-मति पर तैमूर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पारितोषिक देकर सम्मान-पूर्वक उसने बिदा किया। यह बात कहाँ तक सच है, नहीं कह सकते; क्योंकि तैमूर के द्वारा शीराज़ लिये जाने के पहले ही हाफ़िज़ की मृत्यु हो चुकी थी।

थोड़ी ही उम्र से हाफ़िज़ ने कविता और दर्शन-शास्त्र में अभ्यास आरंभ किया और शीघ्र ही इन शास्त्रों में वह पार-

दर्शी हो गया। शेख़ मुहम्मद अत्तार नाम के प्रसिद्ध फ़क़ीर से उसने दर्शन-शास्त्र सीखा। कुछ दिनों में हाफ़िज़ भी इ. शेख़ साहब का अनुयायी हो गया। इस पर शाह के वज़ीर हाजी क़यामुद्दीन की बड़ी कृपा थी। उसने विशेष करके हाफ़िज़ ही के लिए एक कॉलेज खोला। इस कॉलेज में हाफ़िज़ क़ुरान पढ़ाने पर मुक़र्रर हुआ। परंतु हाफ़िज़ का स्वभाव बहुत ही उच्छृंखल था। वह मद्यप भी था। उसे बाहरी दिखाव बिलकुल पसंद न था। वह कहता था कि अमीर और ग़रीब दोनों का ईश्वर एक ही है। उसके लिए मसजिद, मंदिर और गिरजाघर तुल्य थे। इसलिए उसके साथी अध्यापकों तथा और-और विद्वानों ने भी हाफ़िज़ के आचरण पर कटाक्ष करना आरंभ किया। हाफ़िज़ से भी मौन नहीं रहा गया। उसने भी अपनी कविता में उन लोगों की ख़ूब दिल्लगी उड़ाई और उनकी अंध-धर्मभीरुता, उनके दांभिक आचरण और उनके मिथ्या विश्वासों पर, मौक़ा हाथ आते ही, बड़े ही मर्म-भेदी व्यंग्य कहे। हाफ़िज़ को लोग कुछ-कुछ नास्तिक समझते थे। और-और बातों के सिवा इसका एक कारण यह भी था कि हाफ़िज़ ने मंसूर नाम के पहुँचे हुए फ़क़ीर की प्रशंसा में कविता की थी। यह फ़क़ीर अपने को "अनल-हक़" (अहं ब्रह्मास्मि) कहता था। बड़ी दुर्दशा करके उसे फाँसी दी गई थी; परंतु अंत तक वह "अनल-हक़" ही कहता रहा।

हाफ़िज़ की कीर्ति बहुत शीघ्र देश-देशांतरों में फैल गई। उसकी मनोमोहिनी कविता का रस-पान करके लोग मस्त होने लगे। अनेक शक्तिशाली बादशाहों और अमीरों ने उसे अच्छे-अच्छे पारितोषिक भेजे। किसी-किसी ने हाफ़िज़ को बड़े प्रेम से अपने यहाँ आने का आवाहन किया। सुनते हैं, दक्षिण में, बीजापुर के बादशाह महमूदशाह बहमनी ने भी हाफ़िज़ को अपने यहाँ, इस देश में, पधारने के लिए आमंत्रण के साथ जहाज़ भेजा था। इस आमंत्रण को हाफ़िज़ ने स्वीकार भी कर लिया था। यहाँ तक कि हिंदोस्तान को आने के लिए वह शीराज़ से चल भी दिया; परंतु सामुद्रिक सफ़र में उसे कुछ कष्ट हुआ। इसलिए कुछ दूर आकर वह शीराज़ को लौट गया। उस समय बंगाले के मुसलमान सूबेदार ने भी, सुनते हैं, उसे बुलाया था; परंतु उसने आदर-पूर्वक इस निमंत्रण को भी अस्वीकार कर दिया। यज़्द के अधिकारी यहिया इब्न मुज़फ़्फ़र के बहुत कहने-सुनने पर, एक बार हाफ़िज़ उसके यहाँ गया। पर वहाँ जाने से उसे प्रसन्नता न हुई। थोड़े ही दिनों में वह शीराज़ लौट आया और फिर कभी उसने उस शहर को नहीं छोड़ा। जब तक वह यज़्द में था, शीराज़ को लौटने के लिए वह बहुत ही उत्सुक था।

हाफ़िज़ के गृहस्थाश्रम-जीवन के विषय में बहुत ही कम बातें ज्ञात हैं। उसने एक कविता में अपनी स्त्री की और

दूसरी में अपने अविवाहित पुत्र की मृत्यु का कारुणिक उल्लेख किया है। यह भी सुना जाता है कि शाख़े-नबात-(इक्षुलता या मिश्री की क़लम)-नामक एक सु-रूपवती रमणी पर हाफ़िज़ अनुरक्त था। उसकी बहुत-सी शृंगारिक कविता उसी को लक्ष्य करके लिखी गई है।

हाफ़िज़ के दीवान को कहीं भी मनमानी जगह पर खोलकर लोग शुभाशुभ प्रश्न देखते हैं और वहाँ पर निकले हुए पद्य या पूरी ग़ज़ल के भावार्थ में प्रश्न का अर्थ निकालते हैं। ऐसा करने से पहले लोग एक मिसरा पढ़ते हैं, जिसमें हाफ़िज़ को यथार्थ बात बतलाने के लिए शाख़े-नबात की क़सम दिलाई गई है। वह मिसरा यह है—

قسم بشاخ نباتست ترا ای حافظ
فال ما راست بگو تا شودم با تو یقین

अक्षरांतर

क़समे शाखे नबातस्त तुरा ऐ हाफ़िज़।
फ़ाले मा रास्त बिगो ता शवदम बा तो यक़ीं॥

इससे भी हाफ़िज़ और शाख़े-नबात का संबंध सूचित होता है। सुनते हैं, नादिरशाह को दीवाने-हाफ़िज़ पर इतना विश्वास था कि बिना उसके द्वारा शुभाशुभ का विचार किये वह कोई चढ़ाई या लड़ाई न करता था।

हाफ़िज़ शिया-संप्रदाय का मुसलमान था। वह हदीस अर्थात् मुहम्मद साहब की निज की कही हुई बातों पर विश्वास न रखता था। उसने अपनी कविता में ऐसी-ऐसी बातें भी कही हैं जिनको धार्मिक मुसलमान अनुचित और धर्म-विरुद्ध समझते हैं। इन कारणों से जब हाफ़िज़ की मृत्यु हुई तब शीराज़ के धर्माचार्यों में इस बात का विवाद उठा कि हाफ़िज़ का शव मुसलमानी नियमों के अनुसार उचित स्थान में समाधिस्थ किया जाना चाहिए अथवा नहीं। इसका फ़ैसला हाफ़िज़ ही के दीवान पर रक्खा गया। यह निश्चय हुआ कि इस पुस्तक का कोई पन्ना सहसा खोला जाय और वहाँ जो कुछ निकले उसी के अनुसार काम किया जाय। निदान उन लोगों ने ऐसा ही किया। हाफ़िज़ के दीवान का जो भाग खोला गया उसमें लिखा था—"हाफ़िज़ के जनाज़े (रथी) से अपना पैर पीछे मत हटाओ; क्योंकि, यद्यपि, वह पापों में डूबा हुआ है, तथापि वह बिहिश्त में अवश्य दाख़िल कर लिया जायगा।" अतएव वह मुसलमानों के नियमानुसार यथाविधि समाधिस्थ किया गया। हाफ़िज़ के समाधि-स्तंभ पर उसी के कहे हुए दो पद्य खुदे हैं और वहाँ उसका दीवान रक्खा रहता है। उसकी समाधि के दर्शन के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं और समाधि पर वे जो सामग्री चढ़ाते हैं उससे वहाँ रहनेवाले दरवेशों (फ़क़ीरों) का अच्छी तरह जीवन-निर्वाह होता है।

ये दरवेश दीवाने-हाफ़िज़ से अच्छी-अच्छी उक्तियाँ सुना-कर यात्रियों को प्रसन्न करते हैं। जिस जगह हाफ़िज़ की समाधि है उसका नाम खाके-मुसल्ला है।

हाफ़िज़ ने यद्यपि और कई छोटी-छोटी किताबें लिखी हैं, परंतु उसका दीवान सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वह हाफ़िज़ की कही हुई उत्तमोत्तम ग़ज़लों का संग्रह है। प्रत्येक ग़ज़ल में पाँच से लेकर सोलह तक बैत हैं। प्रायः प्रत्येक अंतिम बैत में हाफ़िज़ ने अपना नाम दिया है। हाफ़िज़ की ग़ज़लें वर्ण-क्रमानुसार रक्खी गई हैं। इससे यह नहीं जाना जाता कि कौन ग़ज़ल पहले और कौन पीछे बनी है।

हाफ़िज़ की कविता के विषय में बहुत मत-भेद है। कोई-कोई कहते हैं कि उसमें केवल पार्थिव प्रेम और लौकिक बातों का वर्णन है। परंतु कोई-कोई इसके प्रतिकूल मत देते हैं। वे कहते हैं कि हाफ़िज़ ने जो कुछ कहा है सब अलौकिक और अपार्थिव विषय में कहा है-अर्थात् उसकी कविता केवल रूहानी है; वह केवल ईश्वर-विषयक है। यह मत सूफ़ी-संप्रदाय के मुसलमानों का है। वे हाफ़िज़ की कविता को ईश्वर पर घटाते हैं और कहते हैं कि उसका यथार्थ भाव समझने की कुंजी केवल उन्हीं के पास है। परंतु जिन्होंने हाफ़िज़ की कविता का बहुत कुछ विचार किया है और चिरकाल तक उसके परिशीलन में निमग्न रहे हैं उनका कथन है कि उसमें पार्थिव विषय

भी हैं और अपार्थिव भी। उसका सृष्टि-सौंदर्य-वर्णन, उसकी मनोमोहिनी शृंगारिक उक्तियाँ और मद्य-प्राशन-विषयक उसके विलक्षण कथन आदि का विचार करके विद्वानों का मत है कि इन सब बातों को हाफ़िज़ ने ईश्वर को लक्ष्य करके नहीं कहा। इन बातों का साधुता अर्थात् फ़क़ीरी से बहुत कम संबंध है।

हाफ़िज़ की कविता स्वाभाविक है। उसकी कल्पना-शक्ति बहुत उद्दंड है। उसकी किसी-किसी कल्पना को सुनकर हृदय में आतंक-सा उत्पन्न हो जाता है। उसने कोई-कोई बात बहुत ही अद्भुत कही है। उसके दीवान की कई आवृत्तियाँ बर्लिन, लंदन और पेरिस में छपी हैं। उसकी कविता के अनुवाद भी विदेशी भाषाओं में हो गये हैं। सर विलियम जोंस और अध्यापक कावेल, यमरसन और डि हर बेलाट आदि ने उस पर बहुत कुछ लिखा है। बंबई के श्रीयुत के० एम्० जौहरी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने भी दीवाने-हाफ़िज़ का अनुवाद अँगरेज़ी में किया है। फ़ारिस में हाफ़िज़ की कविता का इतना अधिक प्रचार है कि वहाँ के पढ़े-लिखे सामाजिक मनुष्यों को वह कंठ रहती है। ग़रीब और अमीर सभी उसकी कविता का आदर करते हैं। फ़ारिस के रेगिस्तान में दूर-दूर तक सफ़र करनेवाले, खच्चरों और ऊँटों के क़ाफ़िलेवाले, हाफ़िज़ की ग़ज़लों को बड़े प्रेम से गाते हैं और ऐसा करके मार्ग का श्रम

परिहार करते हैं। हाफ़िज़ फ़ारिस का सबसे अधिक प्यारा और प्रसिद्ध कवि है।

फ़ारिस के विद्वान् समालोचकों का मत है कि हाफ़िज़ की कविता निकम्मी—दूषित—ठहराई जा सकती है; परंतु उसकी तुलना और किसी कविता से नहीं की जा सकती। उसकी कविता अनन्वयालंकार का सच्चा उदाहरण है। उसकी समता उसी से हो सकती है और किसी से नहीं। वह वही है। हाफ़िज़ ने जो कुछ कहा है, नया ही कहा है। उसकी उक्तियों में उच्छिष्टता नहीं। उसमें दोष हो सकते हैं; परंतु वैसे दोष उसी में पाये जा सकेंगे, और कहीं नहीं। उसकी कविता में जो रमणीयता है वह उसी में है। उसे अन्यत्र ढूँढ़ना व्यर्थ है।

हाफ़िज़ के बराबर प्रतिभाशाली कवि होना दुर्लभ है। उसके समान ललित और मधुर-भाषी दूसरा कवि, संस्कृत को छोड़कर, और भाषाओं में नहीं पाया जाता। हाफ़िज़ की कविता का आनंद, उसके दीवान को फ़ारसी ही में पढ़ने से, अच्छी तरह आ सकता है। अनुवाद में वह रस नहीं आता। हाफ़िज़ को, पंडितराज जगन्नाथराय की तरह, अपनी कविता का गर्व भी था। उसने कई जगह, इस विषय में, गर्वोक्तियाँ कही हैं। ये गर्वोक्तियाँ चाहे सचमुच ही अभिमान-जन्य हों और चाहे यों ही स्वाभाविक रीति पर उसके मुँह से निकल गई हों। पर उसके मुँह से उसकी

गवोक्तियाँ भी अच्छी लगती हैं। वे उसी प्रकार निकली हैं जैसे फूलों से मकरंद टपकता है अथवा इक्षु से रस निकलता है।

यहाँ पर, हम, हाफ़िज़ की रसवती कविता के दो-चार नमूने देना चाहते हैं और साथ ही मुंशी नानकचंदजी का किया हुआ पद्यात्मक अनुवाद भी हम प्रकाशित करते हैं—

(१)

صبا اگر گذرے افتدت بکشور دوست
بیار نفحۂ از گیسوے معنبرے دوست

अक्षरांतर

सबा अगर गुज़रे उफ़्तदत् बकिश्वरे दोस्त।
बियार नफ़हए अज़ गेसुए मुअंबरे दोस्त॥

अनुवाद

पवन मीत जो कभी जाय तू मेरे प्राणप्यारे के देश।
उसके केश सुगंधित से कुछ ले आना सुगंध का लेश॥

(२)

بجان او کہ بشکرانہ جان برافشانم
اگر بسوے من آری پیام از برے دوست

अक्षरांतर

बजाने ऊ कि बशुक्रानः जाँ बरफ़शानम्।
अगर बसूये मन आरी पयामे अज़बरे दोस्त॥

अनुवाद

प्यारे की है शपथ करूँ मैं तुझ पर नौछावर निज प्राण।
एक सँदेसा प्राणनाथ का जो तू मुझको देवै आन॥

(३)

اگر چنانچہ دران حضرتت نباشد بار
برائے دیدہ بیاور غبارے از در دوست

अक्षरांतर

अगर चुनाँचः दराँ हज़रतत न बाशद बार।
बराय दीदः बियावर गुबारे अज़ दरे दोस्त॥

अनुवाद

और न जो तू जाने पावै उसके सम्मुख किसी प्रकार।
नैनों के अंजन को रजकण लादे उसका द्वार बुहार॥

(४)

دل شوق لبت مدام دارد
یارب زلبت چه کام دارد

अक्षरांतर

दिल शौक़े लबत मुदाम दारद।
यारब ज़ लबत चि काम दारद॥

अनुवाद

मन में तेरे अधर की रहत निरंतर चाह।
कौन हेत जाने हरो कछु न याकी थाह॥

(५)

جان شربت مہرو بادۂ شوق

دز ساغر دل مدام دارد

अक्षरांतर

जाँ शरबते महरो बादए शौक़ ।

दर सागरे दिल मुदाम दारद ॥

अनुवाद

मधुरासव-अनुराग अरु प्रेम-वारुणी-वार ।

अंतर घट में भर रहे निज मन-मुकुर निहार ॥

(६)

شوریدہ زلف یار دائم

در دام بلا مقام دارد

अक्षरांतर

शोरीदए ज़ुल्फ़े यार दायम् ।

दर दामे बला मुक़ाम दारद ॥

अनुवाद

घुँघरारी लट की लगी जाके मन को लाग ।

नाग-पाश में बद्ध रहै बँध्यौ सकल सुख त्याग ॥

(७)

بایار کجا نشیند آنکو

اندیشہ خاص و عام دارد

अक्षरांतर

वायार कुजा नशीनद आँ को।
अंदेशए खासो आम दारद॥

अनुवाद

प्रीतम सँग कैसे करै सो निःशंक विहार।
लोकलाज कुलकानि सों जो भयभीत अपार॥

(८)

خرم دل آن کسے کہ صحبت
با یار علے الدوام دارد

अक्षरांतर

खुर्रम दिले आँ कसे कि सुहबत।
वायार अलद्दाम दारद॥

अनुवाद

सुखी होय या जगत में कहत सयाने लोग।
जेहि सँग प्रीतम को रहत बिन अंतर संयोग॥

(९)

حافظ چو دمے خوش است مجلس
اسباب طرب تمام دارد

अक्षरांतर

हाफ़िज़ चु दमे खुशस्त मजलिस।
अस्बाबे तरब तमाम दारद॥